दूसरी नज़र

■ पी चिदंबरम

कष्टदायक संघवाद

मैं ने 28 फरवरी, 1997 को अपने बजट भाषण में 'सहकारी संघीय राजव्यवस्था' वाक्य का प्रयोग किया था। मैं यह दावा तो नहीं करता कि सबसे पहले मैंने ही इस वाक्य का प्रयोग किया था, लेकिन मुझे खुशी इस बात की है कि 'सहकारी संघीय राजव्यवस्था' का प्रयोग बजट भाषणों और अन्य मौकों पर बार-बार किया जाता रहा है।

राज्य संप्रभु हैं

'सहकारी संघवाद' का मतलब क्या होता है? यह वाक्य बताता और पुष्टि करता है कि भारत एक संघीय राज्य है। इसमें एक केंद्र सरकार है और राज्य सरकारें हैं। हर सरकार के अपने निश्चित विधायी क्षेत्र हैं। केंद्र सरकार (संसद के द्वारा) राज्य सरकारों के तय अधिकार क्षेत्र पर अतिक्रमण नहीं कर सकती। राज्य सरकार भी (विधानसभा के द्वारा) केंद्र सरकार के लिए तय अधिकार क्षेत्रों का अतिक्रमण नहीं कर सकती। कुछ ऐसे भी अधिकार क्षेत्र हैं जिसमें दोनों सरकारें कानून बना सकती हैं। विधायी क्षेत्रों का बंटवारा ही संघवाद की विशेषता है। संवैधानिक योजना का आदर करना ही सहकारी संघवाद है।

फिर भी, भारत के संविधान में अपवादस्वरूप ऐसे विशेष प्रावधान हैं जो संसद को किसी भी मामले पर (धारा 248), यदि जरूरी हो तो राज्य सूची के विषय सहित सीमित अवधि के लिए ऐसे किसी भी विषय पर जो 'राष्ट्रहित के लिहाज से जरूरी या उचित हो' (धारा 249) और आपातकाल लागू कर दिए जाने पर किसी भी विषय पर (धारा 250) कानून बनाने का अधिकार देते हैं।

धारा 258(2) एक महत्त्वपूर्ण धारा है। संसद द्वारा बनाया गया कानून राज्य सरकार या इसके अधिकारियों को शक्तियां प्रदान कर सकता है और शुल्क लगा सकता है, लेकिन केंद्र राज्य को पैसा उसी के अनुरूप देगा, जैसा कि तय किया हुआ है। यह प्रावधान राज्यों की संप्रभुता, अधिकारों और शक्तियों की पुष्टि करता है।

जबर्दस्ती विधेयक पास

भाजपा की सरकार एक अलग तरह की सरकार है। यह न तो राज्यों के अधिकारों का सम्मान करती है, न ही संवैधानिक सीमाओं और बारीकियों पर गौर करती है।

भाजपा सरकार ने जिस तरह से राज्यसभा में विधेयक पास कराए हैं उससे उसकी संघवाद के प्रति प्रतिबद्धता का पता चलता है। लोकसभा जनता का सदन है, जबकि राज्यसभा राज्यों की परिषद है। राज्यसभा के सदस्यों का पहला कर्तव्य राज्यों के हितों का संरक्षण करना और उन्हें आगे बढ़ाना है। दो अगस्त तक, लोकसभा ने इस सत्र में अट्ठाईस विधेयक पास किए और राज्यसभा ने छब्बीस। और इनमें से एक भी विधेयक पर विपक्षी दलों के साथ सलाह-मशविरा नहीं किया गया। एक विधेयक भी विस्तृत छानबीन के लिए स्थायी समिति या प्रवर समिति को नहीं भेजा गया। किसी भी विधेयक पर राज्य सरकारों से कोई राय-मशविरा नहीं किया गया, उन विषयों पर भी, जो संविधान की समवर्ती सूची (सूची 3) में शामिल हैं और जिनसे राज्यों के अधिकार प्रभावित होते हैं। सरकार ने विपक्ष द्वारा रखे गए संशोधनों में एक को भी नहीं माना।

कुछ उदाहरण पर्याप्त होंगे। जस्टिस पुट्टास्वामी मामले में सुप्रीम कोर्ट ने संविधान की धारा 110 के दायरे को स्पष्ट किया है और सरकार उस फैसले से बंधी है। राज्यसभा धन विधेयक में संशोधन नहीं कर सकती, यह सुझाव दे सकती है और लोकसभा को लौटा सकती है। राष्ट्रपति धन विधेयक पर मंजूरी को रोक नहीं सकते हैं और न ही इसे पुनर्विचार के लिए संसद को लौटा सकते हैं। इन सीमाओं का फायदा उठाते हुए और धारा 110 का निर्लज्जतापूर्ण उल्लंघन करते हुए सरकार ने कम से कम दस गैर-वित्तीय कानूनों को वित्त (क्रमांक 2) विधेयक के जरिए संशोधित करा लिया और इस तरह सरकार राज्यसभा द्वारा होने वाली छानबीन या पुनर्विचार के राष्ट्रपति के निर्देश को टाल गई।

सूचना का अधिकार कानून 2005 का शुरुआती कानून के रूप में सबने स्वागत किया था। इस कानून की धारा 15 सभी राज्य सरकारों को राज्य सूचना आयोग के गठन के लिए अधिकृत करती है। राज्य सरकार ही राज्य सूचना आयुक्तों का चयन और उनकी नियुक्ति करेगी। शुरुआती कार्यकाल पांच साल का रखा गया था। अब तक वेतन, भत्ते और सेवा से संबंधित अन्य शर्तें तय करने का अधिकार (धारा 16) राज्य सरकार के पास ही था। अब, शुरुआती कार्यकाल, वेतन और सेवा संबंधी शर्तें तय करने का अधिकार केंद्र सरकार ने अपने हाथ में ले लिया है! हमने पूछा, क्यों? इसका कोई जवाब नहीं था।

राष्ट्रीय चिकित्सा आयोग विधेयक कुल मिला कर राज्यों को अपमानित करने जैसा है। चिकित्सा शिक्षा को संचालित करने के लिए राज्य सरकार की हर शक्ति छीन ली गई है और हर राज्य को चार साल में सिर्फ दो साल के लिए आयोग में अपना सदस्य भेजने का अधिकार दिया गया है! यह वैसा ही अच्छा है जैसे चिकित्सा शिक्षा के विषय को तीसरी सूची से पहली में कर दिया जाए। फिर भी यह राज्यों के बिना किसी विरोध के राज्यों की परिषद में पारित हो गया!

हर तरह से छल

राज्यसभा में विधेयकों को पास कराने के लिए सरकार वोटों का जुगाड़ कर कैसे लेती है? मुसलिम महिला (विवाह में अधिकारों का संरक्षण) विधेयक, जिसे तीन तलाक विधेयक के रूप में भी जाना जाता है, को ही लें। सरकार चौरासी के मुकाबले निन्यानवे वोटों से इसलिए जीत गई, क्योंकि इस विधेयक पर मतदान के वक्त विपक्ष के छियालीस सदस्य गैरहाजिर थे! बसपा का कोई सदस्य मौजूद नहीं था, सपा के छह सदस्य गैरहाजिर थे, एनसीपी के चार में से दो सदस्य मौजूद नहीं थे, उसी दिन कांग्रेस के एक सदस्य ने इस्तीफा दे दिया (और अगले दिन भाजपा में शामिल हो गया) और कांग्रेस के भी चार सदस्य गैरहाजिर रहे। अन्नाद्रमुक, जद (एकी), टीआरएस और पीडीपी जो इस विधेयक के खिलाफ बोलते रहे थे, विधेयक पर मतदान के वक्त गायब हो गए!

कानूनों को पास कराने के लिए भाजपा ने बांटने, फुसलाने, डराने, धमकाने या गुप्त 'सौदेबाजी' करने जैसे हर तरीके का इस्तेमाल किया है, जो राज्यों को नगर निगमों में तब्दील करके रख देंगे और एकत्व के अनर्थकारी विचार में एक और आयाम जुड़ जाएगा- हर चीज के लिए एक सरकार।

इस आदेश के बाद ही भारतीय जनता पार्टी ने अपने इस विधायक को निष्काशित किया पार्टी से। यह काम अगर पिछले साल ही किया होता, जब उन्नाव की उस बच्ची की शिकायत पर सेंगर को बलात्कार के आरोप में गिरफ्तार किया गया था, तो लोग मानते कि भारतीय जनता पार्टी वास्तव में नैतिकता की राह पर चलना चाहती है। इतना विलंब हुआ है, सेंगर को बचाने के इतने प्रयास हुए हैं, कि भारतीय जनता पार्टी की छवि भी खराब हुई है और व्यक्तिगत तौर पर मोदी की भी। क्यों विलंब हुआ, कोई नहीं जानता और वह भी ऐसे कांड में, जहां बच्ची की शिकायत है कि उसका सामूहिक बलात्कार किया है सेंगर और उसके साथियों ने।

अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी भारत के तारे अब इतना नहीं चमक रहे हैं। इमरान खान हाल में गए वॉशिंगटन प्रधानमंत्री बनने के बाद पहली बार और डोनाल्ड ट्रंप उनके करिश्मे से इतना प्रभावित हुए कि कश्मीर समस्या में मध्यस्थता करने का प्रस्ताव रख दिया यह कहते हुए कि मोदी के साथ जब उनकी मुलाकात हुई थी ओसाका में कुछ हफ्ते पहले, तो उन्होंने भी कश्मीर के मसले में अमेरिका की मध्यस्थता की बात की थी। बाद में हमारे विदेश मंत्री ने स्पष्ट किया कि भारत की तरफ से ऐसी कोई दरखास्त नहीं की गई है, लेकिन नुकसान हो चुका था। जिस पाकिस्तान के बारे में ट्रंप कभी कहा करते थे कि वह एक झूठा और धोखेबाज देश है, जिसने अमेरिका के अरबों डॉलर लेकर अमेरिका के जवान मारे हैं अफगानिस्तान में, उस पाकिस्तान के लिए फिर से वित्तीय मदद दिलवाने की अब बातें करने लगे हैं।

हम जानते हैं कि ट्रंप ऐसा कर रहे हैं, क्योंकि अफगानिस्तान से अपने सैनिक हटाना चाहते हैं अमेरिका में अगला राष्ट्रपति चुनाव होने से पहले। लेकिन फिर भी यह कहना पड़ेगा कि पाकिस्तान ने यह बाजी मार ली है। भारत को न्योता तक नहीं मिला है निकट भविष्य में अफगानिस्तान में शांति वार्ता में भाग लेने के लिए। इधर अपने कश्मीर में शांति बहाल होने के बदले तनाव बना रहा उन अफवाओं को लेकर कि मोदी इस राज्य की विशेष स्थिति को हटाना चाहते हैं। धारा 370 को हटाने की बातें भारतीय जनता पार्टी दशकों से करती आई है, सो इन अफवाओं की अहमियत है। नतीजा, कश्मीर घाटी फिर से उबाल पर आ रही है। कहां गए मोदी के अच्छे दिन?

भाषा बनाम सियासी मंशा

कौशलेंद्र प्रपन्न

भाषा के चुनाव और सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में राजनीति का हस्तक्षेप प्रकारांतर से भाषायी विमर्श और भाषा के शिक्षण शास्त्र को नजरअंदाज करता है। एक ओर जहां नई शिक्षा नीति का प्रारूप और पूर्व की शिक्षा नीतियां, समितियां मानती और सिफारिश करती हैं कि बच्चों को बहुभाषी परिवेश प्रदान किया जाना चाहिए। स्कूल इस प्रक्रिया में एक अहम भूमिका में माना गया है। स्कूल में जिस भाषा को तवज्जो दी जाती है वही बच्चों के लिए स्वीकार्य मान ली जाती है। अमूमन पाया जाता है कि बच्चों को स्कूली और घर की भाषा के बीच के द्वंद्व में डोलना पड़ता है। हालांकि जहां एक ओर नीतियां मातृभाषा, स्थानीय भाषा, क्षेत्र विशेष की भाषा को शिक्षा का माध्यम मानती हैं, वहीं दूसरी ओर इससे भी मुंह नहीं फेर सकते कि सरकारें भाषा के चुनाव में अपने हित और स्वार्थ को तरजीह देती हैं। इसका ताजा उदाहरण दिल्ली सरकार का फैसला है। दिल्ली में मैथिली भाषा को स्कूलों में पढ़ाने का निर्णय अकादमिक विमर्श से नहीं निकला है, बल्कि आगामी चुनाव के मद्देनजर एक खास वर्ग, राज्य और भाषाभाषियों का समर्थन और वोट अपनी ओर करने का प्रयास है।

मैथिली और भोजपुरी को राजनीतिक प्रश्रय देना सीधे-सीधे त्रिभाषा सूत्र को हाशिए पर धकेलना भी है। अगर भोजपुरी और मैथिली को स्कूलों में पढ़ाने के प्रति सरकार संजीदा है, तो क्यों नहीं वह गढ़वाली, कोंकणी, अवधी, मालवी, मारवाड़ी, मेवाती, मलयाली आदि भाषाओं को भी स्कूलों में पढ़ाने के प्रति सजग है? जबकि बच्चों और अभिभावकों की संख्या पर नजर डालें तो दिल्ली से सटे राज्यों- राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, उत्तर प्रदेश राज्यों से बच्चे दिल्ली के सरकारी स्कूलों में पढ़ रहे हैं। बिहार से भी अभिभावक दिल्ली में हैं, पर सिर्फ बिहार की मैथिली को क्यों राज्याश्रय प्रदान किया जाए। भोजपुरी को संविधान की आठवीं अनुसूची में शामिल करने के लिए केंद्र सरकार से सिफारिश करने की मंशा दिल्ली सरकार प्रकट कर चुकी है।

यह कहीं न कहीं राजनीति से प्रेरित कदम ही माना जाएगा। इसमें अकादमिक, भाषाविद्, शिक्षाशास्त्रियों से राय नहीं ली गई होगी। अगर यह कदम उठाने से पूर्व शैक्षिक मंथन किए गए होते, तो शायद महज मैथिली और भोजपुरी को यह तवज्जो नहीं मिलती, बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं को भी चिंतन की परिधि में रखा जाता। त्रिभाषा सूत्र या फिर भाषा पर विभिन्न समितियों की सिफारिशों पर विचार किया जाता, तो ऐसी गलती नहीं होती।

कोठारी आयोग की सिफारिशें भी इस ओर इशारा करती हैं कि मातृभाषा, क्षेत्र की भाषा और एक भारतीय भाषा का अध्ययन-अध्यापन किया जाए। बच्चों को स्कूली स्तर पर भारतीय भाषाओं से परिचय कराना मुख्य स्थापनाओं में से एक है। जब भारतीय भाषाओं के संरक्षण और संवर्द्धन की सिफारिश की गई, तो इसमें यह संदेश निहित है कि राज्य की भाषा के साथ ही बच्चे की मातृभाषा और एक भारतीय भाषा का चुनाव बच्चे को प्रदान किया जाए। यहां दिल्ली सरकार को विचार करना होगा कि क्या वह पूर्व और वर्तमान की शिक्षा नीतियों की सिफारिशों, निर्देशों को नजरअंदाज कर एक नई शुरुआत करना चाहती है?

हालांकि गांधीजी ने वर्धा में शिक्षा मंत्रियों के सम्मेलन में कहा था कि प्राथमिक स्तर पर शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। उस वक्त गांधीजी के इस अनुमोदन का समर्थन जाकिर हुसैन ने भी किया थी। लेकिन राजनीतिक ताकतें इसे अमल में लाने से रोकने में सफल रहीं। भाषा सीखने-सिखाने को लेकर समय समय पर राजनीति हस्तक्षेपों का एक लंबा इतिहास रहा है। भाषायी संघर्ष और भाषायी द्वंद्व से बच्चों के साथ ही बड़ों को भी जूझना पड़ता है। एक बच्चे की नजर से देखें और सोचें तो पाएंगे कि एक बच्चा, जिसकी घर की भाषा और स्कूली भाषा के बीच एक फांक है, तो ऐसे में वह किसी भी भाषा के साथ न्याय नहीं कर पाता।

एक ओर भाषायी भूगोल में विस्तार हो रहा है, वहीं बच्चा ऐसी भाषा का चुनाव करना चाहता है, जिस भाषा का बाजार हो और बाजार में रोजगार हो। ऐसे में क्या सरकार मैथिली भाषा में तमाम विषयों के पाठ्यक्रम, पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तक का निर्माण समय पर पूरी कर पाएगी। ऐसे सवालों, बल्कि चुनौतियों का पूर्वानुमान लगा कर हमें रणनीति बनाने की आवश्यकता पड़ेगी। क्या हमारे पास मैथिली भाषा के प्रशिक्षित शिक्षक हैं, जो सीखने-सिखाने में दक्ष हैं। जमीनी हकीकत को नजरअंदाज नहीं कर सकते।

अगर भाषायी सर्वेक्षण को आधार बनाया जाता तो यह कदम वैध माना जाता, पर इस मसले पर सिर्फ हड़बड़ी दिखाई देती है। हालांकि हम अब भी पुराने भाषायी सर्वे से ही काम चला रहे हैं। वह सर्वेक्षण देश की विभिन्न भाषाओं पर आधारित है। अकेले दिल्ली की बात करें, तो हमारे पास प्रमाणिक आंकड़े शायद नहीं हैं, जिसके आधार पर कह सकें कि दिल्ली के स्कूलों में इतने प्रतिशत बच्चे फलां भाषा बोलते और पढ़ते-समझते हैं। अगर हमारे पास प्रमाणित और वैज्ञानिक भाषायी सर्वे के आधार ही नहीं हैं, तो फिर एक विशेष भाषा को कैसे स्कूली पाठ्यक्रमों का हिस्सा बनाने की घोषणा कर सकते हैं। क्या शिक्षा विभाग इस नई पहल के लिए तैयार है? क्या उसकी तैयारी है कि वह मैथिली भाषा में शिक्षक, किताबें, पाठ्यक्रम आदि बच्चों को मुहैया करा पाएगी।

हमारे पास प्रशिक्षित शिक्षकों की बेहद कमी है। मंथन इस पर भी करना होगा कि क्या हमारे पास मैथिली के शिक्षकों को तैयार कर के लिए सेवापूर्व शिक्षक प्रशिक्षण क्षमता और दक्षता है, जिन्हें हम मैथिली भाषा के शिक्षक के तौर पर नियुक्त कर सकें? मैथिली, भोजपुरी और अन्य भारतीय भाषाओं को स्कूलों में लागू करने से पूर्व शिक्षक-प्रशिक्षण, पाठ्यक्रम, पाठ्यपुस्तक आदि के निर्माण की प्रक्रिया दुरुस्त करनी होगी, वरना यह भी महज घोषणा से आगे नहीं जा सकेगी। नई नियुक्तियों में डीएसएसबी पहले ही उच्च न्यायालय से फटकार खा चुकी है कि शिक्षकों की नियुक्तियों में क्यों समिति समय पर अपना काम पूरा नहीं कर पाती है। तो क्या ऐसे में मैथिली शिक्षकों की भर्ती सरकार सुनिश्चित करती है। क्या यह अध्ययन किया गया है कि दिल्ली के सरकारी स्कूलों में कितने बच्चे हैं, जिनकी मातृभाषा मैथिली है? कितनों बच्चों की ओर से यह मांग आई कि उन्हें मैथिली भाषा पढ़ाई जानी चाहिए? अगर आंकड़े हैं तो सरकार को यह भी स्पष्ट करना और सामने रखने चाहिए कि इतने प्रशिक्षित बच्चे मैथिली भाषी हैं और उनकी मांग है कि उन्हें मैथिली भाषा पढ़ाई जाए। एकबारगी लगता है कि यह सिर्फ अनुमान प्रमाण पर आधारित अवधारणा है कि हमें मैथिली भाषा भी स्कूलों में पढ़ानी चाहिए। ऐसे में भारत के अन्य राज्यों से भी सवाल उठ सकते हैं कि क्यों न उनके राज्य की भाषा को भी स्कूलों में शामिल किया जाए? अगर सिर्फ एक खास प्रांत के खास लोगों को लुभाने के लिए सरकार ने यह घोषणा की है तो इस पर भाषायी और अकादमिक हस्तक्षेप स्वाभाविक हैं।

मुद्दा

> एकबारगी लगता है कि यह सिर्फ अनुमान प्रमाण पर आधारित अवधारणा है कि हमें मैथिली भाषा भी स्कूलों में पढ़ानी चाहिए। ऐसे में भारत के अन्य राज्यों से भी सवाल उठ सकते हैं कि क्यों न उनके राज्य की भाषा को भी स्कूलों में शामिल किया जाए?

धनवानों को धौंस

कल तक लगता था कि नरेंद्र मोदी पर हमारे तैंतीस करोड़ देवी-देवताओं की इतनी मेहर है कि उनके अच्छे दिन हमेशा हमेशा रहेंगे। लेकिन जबसे मोदी, देवताओं की मेहर और मतदाताओं के विश्वास से, दूसरी बार प्रधानमंत्री बने हैं कुछ बदल-सा गया है। अच्छे दिन मोदी के लिए अब इतने अच्छे नहीं रहे हैं। पिछले दो महीनों में आर्थिक और राजनीतिक तौर पर जितनी गलतियां उनकी सरकार कर सकती थी, कर चुकी है। दोष प्रधानमंत्री का है या उनके साथियों का, कहना मुश्किल है, लेकिन इसमें दो राय नहीं कि गलती पर गलती होती गई है।

वक़्त की नब्ज़

■ तवलीन सिंह

मेरी नजर में गलतियों की शृंखला शुरू हुई तब जब मोदी के दूसरे दौर के पहले बजट ने साबित कर दिया कि न आर्थिक दिशा में कोई परिवर्तन आने वाला है और न ही प्रधानमंत्री के दृष्टिकोण में। कभी बातें किया करते थे मोदी संपन्नता लाने की, लेकिन अब ज्यादातर बातें करते हैं गरीबों की, गरीबी हटाने की, बिलकुल उसी तरह जैसे इंदिरा गांधी किया करती थीं, जब देश में समाजवादी दौर उरूज पर था।

समाजवादी सोच खुशहाली ला नहीं सकती है, क्योंकि धन पैदा करनेवालों को इस सोच में अपराधी माना जाता है। हमारी सभ्यता में समाजवादी सोच की कोई जगह नहीं होनी चाहिए। प्राचीन काल से हमने समृद्धि को पूजा है, दरिद्रता को नहीं। हमारे सबसे महत्त्वपूर्ण त्योहार दिवाली में पूजा होती है लक्ष्मीजी की। शायद ही कोई दूसरी सभ्यता है जहां धन की देवी होती हो, लेकिन दशकों की समाजवादी मानसिकता ने हमारे राजनेताओं को इतना गुमराह कर दिया है कि मोदी भी गलत आर्थिक दिशा में चलने लग गए हैं। लगता है कि समाजवादी बन गए हैं।

सो, बजट में कर बढ़ाए गए देश के सबसे अमीर लोगों के इतना ज्यादा कि संदेश गया उनको कि बच कर रहना पड़ेगा। निवेश करना हो अगर इस देश में, तो फूंक फूंक के करना। बजट को हजम कर ही रहे थे वे लोग, जिन्होंने इस देश में धन पैदा करने में अपना पूरा जीवन खपाया है, कि वित्त मंत्रालय ने एक थप्पड़ और मारा। एलान किया कि सीएसआर (समाज के प्रति जिम्मेदारी) का उल्लंघन जो करेंगे उनको पच्चीस लाख रुपए का जुर्माना हो सकता है और जेल भी। सीएसआर को अनिवार्य करना पहले ही गलत था। ऐसा सोनिया गांधी ने किया अपने गरीबपरस्त एनजीओ दोस्तों की सलाह लेकर। माना कि धनवान भारतीयों का फर्ज होना चाहिए समाज के लिए कुछ करना, लेकिन जबर्दस्ती क्यों?

> माना कि धनवान भारतीयों का फर्ज होना चाहिए समाज के लिए कुछ करना, लेकिन जबर्दस्ती क्यों? डराने-धमकाने के बदले प्रधानमंत्री अगर इनसे मिलने की तकलीफ करते तो शायद पाते कि उनकी नई जलशक्ति योजना में ये लोग दिल से मदद करने को तैयार हैं।

डराने-धमकाने के बदले प्रधानमंत्री अगर इनसे मिलने की तकलीफ करते तो शायद पाते कि उनकी नई जलशक्ति योजना में ये लोग दिल से मदद करने को तैयार हैं। लेकिन वित्तमंत्री की नई धमकी के बाद उद्योग जगत में, जो पहले से मायूसी छाई हुई थी, गहरा गई है। अर्थशास्त्री मानते हैं कि देश की अर्थव्यवस्था के ऊपर घने बादल छाए हुए हैं।

रही बात राजनीति की, तो पिछले सप्ताह सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तर प्रदेश सरकार को ऐसी फटकार लगाई कुलदीप सिंह सेंगर पर मेहरबान होने को लेकर, जो शायद ही इस न्यायालय ने पहले कभी लगाई होगी। प्रधान न्यायाधीश ने आदेश दिया है कि उन्नाव में पीड़िता के परिवार को उत्तर प्रदेश सरकार कल तक पच्चीस लाख रुपए मुआवजा देने का काम करे। आदेश यह भी दिया है कि जितने मुकदमे दर्ज हुए हैं सेंगर के खिलाफ उन सबकी सुनवाई आईंदा दिल्ली की किसी अदालत में हो।

सावन का महीना धरम करे सोर

अहा हा देखो देखो! अपने नंदी महाराज दूध पी रहे हैं। भक्त जन उमड़े पड़ रहे हैं और नंदी महाराज को भक्तिनें चम्मच से दूध पिला रही हैं।

एक हिंदी रिपोर्टर बड़े ही आरत भाव से एक पुजारी जी से पूछता है : ये कैसी लीला है प्रभो! पुजारी पुलकित होकर जवाब देता है : सावन के महीने में नंदी महाराज दूध पीते हैं।

खबर पर खबर टूट रही है : ये देखिए, पटना में नंदी महाराज चम्मच से दुद्धू पी रहे हैं। एक रिपोर्टर एक माता से प्रश्न करता है कि क्या नंदी महाराज सचमुच दूध पी रहे हैं? वह खुश होकर कहती है : हां पी रहे हैं। अच्छा लग रहा है। दूसरी औरत कहती है : ये हकीकत है। अरे बढ़िया से दूध पी रहे हैं। नंदी महाराज।

एक चैनल कुछ रेडिकल बन कर चीखता है : ये है अंधविश्वास में डूबी आस्था! लेकिन इससे क्या? भक्त दूध पिलाए जा रहे हैं, नंदी महाराज पिए जा रहे हैं, आप एतराज करने वाले कौन? एक चैनल दिखाने लगता है- दूध पीते कन्हैया का सच कि लीजिए, इधर कन्हैया जी भी दूध पीने लगे।

एक एंकर चीखती है : भारत को 'लॉजिक' नहीं, 'मैजिक' चाहिए। उधर चंद्रयान छोड़ा जा रहा है। इधर नंदी की मूर्ति को दूध पिलाया जा रहा है!

एक हिंदी चैनल अखिल भारतीय नंदी लीला दिखाए जा रहा है। ये देखिए अलीगढ़ में भी नंदी जी को चम्मचों से दूध पिलाया जा रहा है।

एक औरत बताती है कि मेरी बेटी ने दूध पिलाया। रिपोर्टर पूछता है कि आपको कैसे मालूम हुआ कि नंदी जी दूध पी रहे हैं? तो जवाब मिला कि फोन आया था कि नंदी बाबा दूध पी गए। ये चमत्कार है। सावन का महीना है।

एक एंकर बता रहा है कि सोमवार को यह चमत्कार 'आल इंडिया' तक हुआ है। ये देखिए, एमपी के लखीमपुर में नंदी महाराज चम्मच से दूध पी रहे हैं। बिहार और झारखंड से लेकर बंगाल के आसनसोल तक में नंदी महाराज ने दूध पिया है। लोग मानते हैं कि ये चमत्कार है शिव जी का!

एक युवा कहता है कि हमने चम्मच से दूध पिलाया है। नंदी बाबा जल भी पी रहे हैं!बाबा दर्शन देने आए थे धरती पर!

एक चैनल नंदी और शिवजी के संबंध की कहानी कहे जा रहा है कि कैसे नंदी और शिव जी एक ही हैं।

एक चैनल पर एक डॉक्टर आकर बताता है कि संगमरमर की मूर्ति दूध पी ही नहीं सकती। यह 'अंधविश्वास' है। एक बार गणेश की मूर्ति के दूध पीने का भी ऐसा ही हल्ला हुआ था।

इस बीच 'कॉफी कैफे डे' के मालिक सिद्धार्थ की आत्महत्या पर ही राजनीतिक कुश्ती शुरू होती दिखती है। यह एक विचित्र अनुभव है : इधर एक उद्यमी मरता है उधर एक आंसू भी नहीं गिरता है। इधर एक अंग्रेजी चैनल सिद्धार्थ को कांग्रेस का टट्टू और टैक्स चोर सिद्ध किए जा रहा है, उधर कांग्रेस का एक नेता उसे सत्ता के दमन का शिकार सिद्ध किए जा रहा है। 'चोर' के मरने पर कैसा शोक?

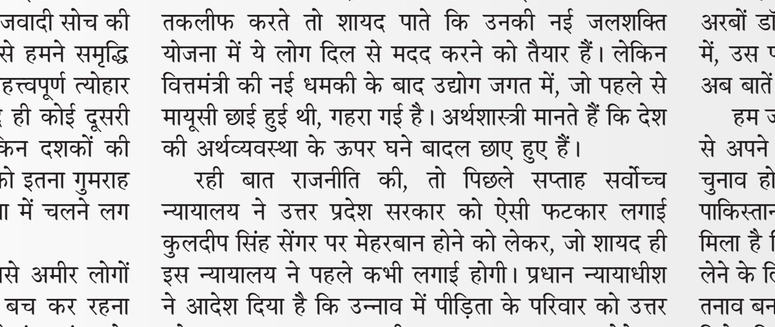

बाखबर

■ सुधीश पचौरी

> सावन के महीने में एक डीएम कांवडियों पर पुष्प वर्षा करके और एक एसपी कांवड़ियों की मालिश करके पुण्य कमाते हों और दूसरी ओर नंदी दूध पीते हों, वहां कुछ भी संभव है।

आह! उन्नाव का बलात्कार केस एक ट्रक द्वारा 'बलात्कार जीविता' (रेप सर्वाइवर) की कार को 'सुयोजित तरीके से एक्सीडेंट' मारने के साथ लौटा, जिसमें दो लोग मारे गए और 'बलात्कार-जीविता' वेंटीलेटर पर नाजुक स्थिति में अचेत है। चैनल दिखाते-बताते रहे कि एक से एक बड़े भाजपा नेता बलात्कार के 'आरोपित' कुलदीप सेंगर के साथ फोटो खिंचवा चुके हैं, कि उसके पीछे कौन खड़ा है, कि अंततः 'डैमेज मैनेज' करने के लिए भाजपा को उसे पार्टी से निकालना पड़ा। इसी बीच सुप्रीम कोर्ट ने आदेश दे दिया कि संबद्ध सभी मामलों को यूपी से बाहर ले जाया जाय! कहने की जरूरत नहीं कि एक बार फिर मीडिया ने एक छोटा-सा 'निर्भया क्षण' बनाया।

यों यूपी में न्याय भी मिलता है, लेकिन केस केस पर निर्भर करता है जैसे कि आजम खान के विश्वविद्यालय में चोरी की दो सौ किताबें क्षण भर में बरामद कर ली गईं, लेकिन 'बलात्कार जीविता' (रेप सर्वाइवर) को सुप्रीम कोट में गुहार लगानी पड़ी!

इसी बीच मुसलिम समाज में प्रचलित 'तीन तलाक' की कुप्रथा को अपराध घोषित करने वाले विधेयक को राज्यसभा में पास करा के भाजपा ने सचमुच इतिहास रच दिया। भाजपा का 'फ्लोर मैनेजमेंट' गजब का रहा। 'विपक्षी' सांसदों की 'अनुपस्थिति' का पूर्वानुमान करना और इस तरह अपने अल्पमत को बहुमत में बदलना कोई मामूली काम न था।

एक बार सावन का महीना फिर लौटा। किन्हीं अमित शुक्ला ने 'जोमेटो' के एक 'मुसमलान डिलीवरी बॉय' के हाथों से खाने का डिब्बा लेने से इनकार कर दिया। उधर 'जोमेटो' ने 'डिलीवरी बॉय' बदलने से इनकार कर दिया। शुक्ला की इस हरकत पर चैनलों में धार्मिक-घृणा के घटिया कृत्य पर हंगामा खड़ा हो गया। एंकर कहने लगे कि 'डिलीवरी बॉय' का भी क्या कोई धर्म देखता है? फिर किस-किस का धर्म पूछोगे? क्या हवा का धर्म भी पूछोगे? शुक्ला बोले कि हमारा सावन का महीना चल रहा है, ऐसा व्यक्ति भेजते जो हमारी आस्थाओं को समझने वाला तो हो।... कोई आश्चर्य नहीं कि इस खुली धार्मिक-घृणा के पक्ष में भी चैनलों पर कई धर्मगुरु आकर जिरह करने लगे कि ये खाने वाला तय करेगा कि वह क्या चाहता है?

सावन के इस महीने में एक डीएम कांवडियों पर पुष्प वर्षा करके और एक एसपी कांवड़ियों की मालिश करके पुण्य कमाते हों और दूसरी ओर नंदी दूध पीते हों, वहां कुछ भी संभव है।

इन दिनों 'सावन का महीना धरम करे सोर' चलता है, 'सावन का महीना पवन करे सोर' नहीं चलता!

नई दिल्ली